# करबला का बलिदान स्थान

## (11 मुहर्रम की शाम को)

**आयतुल्लाहिल उज़्मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी**

किस के दिल में इतनी ताक़त है कि आज करबला के रणक्षेत्र की सैर करे? एक दिल उलझाने वाला सन्नाटा, एक दम घुटाने वाली उदासी ! वह कारवाँ जो दूसरी मुहर्रम को इस ज़मीन पर उतरा था आज अपना सामान बांध कर चला गया है इस लिए सन्नाटा छाया हुआ है– बेशक यह दृश्य दिल हिला देने वाला है लेकिन इनसान भी अजीब चीज़ है, वह हर नई घटना की करवटों के देखने का इच्छुक होता है। चाहे बाद में उसको दुख ही हो फिर भी वह घटनाओं का पता ज़रूर लगाता है। जब ऐसा है तो ज़रा कलेजा मज़बूत कर के मेरे साथ चलो और करबला के दृश्यों की इस समय सैर करो। वह देखो ख़ेमों और छोलदारियों की एक अत्यन्त लम्बी क़तार जिन में से बहुत से में लैम्प जल रहे हैं और वह बहुत से ख़ेमों के झुरमुट में एक बड़ा ख़ेमा जिस में तेज़ रोशनी है– यह रोशनी तुम्हारी दृष्टि को अवश्य अपनी और आकर्षित करेगी, इस लिए चलो यहाँ देख लें कि क्या हो रहा है, यह यज़ीदी फ़ौज के सेनापति उमर बिन साद का ख़ेमा है जहाँ इस समय जीतने, पैग़म्बर के नाती का तीन दिन की भूक प्यास में गला काटने वाले अपने करतूत का गर्व के साथ वर्णन कर रहे हैं और एक एक शहीद की वीरता के वर्णन के साथ उसके क़त्ल करने वाले की तारीफ़ हो रही हैं। यद्यपि सैकड़ों खेमों से फ़ौज के मारे जाने वाले सिपाहियों के शोक में रोने पीटने की आवाज़ें उठ रही हैं। लेकिन विजय के नशे ने शराब के नशे के साथ मिलकर मगर उस से ज़्यादा असर के साथ सब को इस ओर से बेखबर कर दिया है।

मुझे विश्वास है कि तुम अपने सीने के अन्दर एक शरीफ़ इन्सान का दिल रखते हो इस लिये इस दृश्य को देख कर खुशी में साथ देने की जगह तुम उन के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावनाओं से अपने मन को भरा हुआ पाओगे। तुम्हारी मानवता चीख़ उठेगी। भला वह विजय भी कोई विजय है जिसे कम से कम तीस हज़ार फ़ौज, बहत्तर भूख़ों और प्यासों के मुक़ाबले में अपने असंख्य सिपाहियों को खोकर प्राप्त करे, बहत्तर भी ऐसे जिन में सब लड़ने योग्य नहीं और जिन में अस्सी साल के बूढ़े और छः महीने के बच्चे भी शामिल हों ! क्या ऐसी जीत पर गर्व करना पर्ले दर्जे का कमीनापन और दुष्टता नहीं है? क्या यह जीत वास्तव में जीत है ? नहीं नहीं, वह तो हार है जिस की तुच्छता की धूल सदा उस सेना और उस की अन्यायी सरकार पर छाई रहेगी। यह सब विचार यहाँ खुशी और आराम, और मनोरंजन के साधनों को बेरंग और फीका कर देते हैं। जी घबराने लगता है और बेचैन दिल यह चाहने लगता है कि यहाँ से निकल कर मैदान की खुली हवा में सांस लेकर ग़म ग़लत किया जाए– वह देखो फ़ुरात नदी लहरें ले रही है–पानी दूर से दिखाई दे रहा है इस लिये कि रास्ता साफ़ है–वह पहरा जो तीन दिन से इस पानी पर बैठा हुआ था उठ चुका है। वह हज़ारों सिपाहियों के परे जो रात दिन जमे रहते थे आज हटाए जा चुके हैं इस लिये कि वह शेर जिन की जान सुखाने के लिये पानी पर रोक टोक थी वे लड़ भिड़ कर इस संसार के उस पार जा चुका हैं। नदी का किनारा व्याकुल हृदय को शान्त करने के लिये सब से अच्छी जगह है मगर नदी के तट पर से ख़ून की बू आ रही है। मौत के पैरों के निशान हर ओर दिखाई पड़ते हैं। किसी शेर दिल सूरमा के नारों की आवाज़ अब तक गूंज रही है, गिरे हुए ख़ून की लकीर रास्ता बताती हुई आगे ले जाती है। पैर ठिठुकते हैं, दिल धड़कते हैं। एक अज्ञात विचित्र भय का अनुभव होता है। ग़ौर से देखो तो मालूम होगा कि तराई में एक शेर आराम कर रहा है जिस के आगे पीछे बहुत दूर तक तट की सारी बालू ख़ून में गुंधी हुई है। सारा शरीर ज़ख़्मों से चूर है, सर फटा हुआ है दोनों हाथ शरीर से अलग हैं मगर कटे हुए हाथ

वाले कांधे में मश्क का तसमा अब तक फंसा हुआ है। वह मश्क जिस में छेद है और जिस का सारा पानी बह चुका है जिस ने उस वीर के शरीर से बहे हुए खून के साथ मिलकर रणक्षेत्र को दूर तक लाल कर दिया है– ढोल तो बहुत दूर पड़ी है मगर तलवार मुंह के क़रीब है। झंडा जो हवा में लहरा रहा था वह अब ज़मीन पर है मगर बहादुर का सीना उसकी रक्षा अब भी कर रहा हैं। यह है अली का शेर, हुसैन के हाथों का बल और उन का ध्वजवाहक, प्यासी सकीना को पानी पिलाने के लिए जाने वाला बनी हाशिम का चांद, अब्बास जो हुसैनी सेना का अन्तिम, सैनिक था, जिस ने सब के अन्त में हुसैन से लड़ने की आज्ञा मांगी मगर इमाम हुसैन ने फिर भी लड़ने की आज्ञा नहीं दी। केवल बच्चों की प्यासी बुझाने के लिये पानी का सामान करने की आज्ञा दी। अब्बास की यह स्मरणीय सफलता थी कि वह फौज का पहरा हटाकर मशक में पानी भर लेने में समर्थ सिद्ध हुए मगर अफ़्सोस ! कि भरी हुई मशक को लेकर ख़ेमे तक पहुँचना समभव न हुआ–एक तीर ने मशक को छेद कर सारा पानी बहा दिया अैर अब्बास ने सैकड़ों ज़ख़्म खाकर अपने शरीर का सारा ख़ून बहा दिया। अब्बास के हाथ मशक और अलम में फंसे हुए थे फिर भी वह दुशमन की नज़र में कमज़ोर नहीं थे। अन्त में उन के दोनों हाथ काट डाले गए मगर फिर भी अब्बास जब तक खुद घोड़े पर से नहीं गिरे अलम को ज़मीन पर गिरने नहीं दिया। आज हज़ारों अलम उसी एक अलम की याद में हज़ारों काँधों पर उठ रहे हैं। और हर इमामबाड़े में हुसैन के नाम की जरीह (ताज़िया) तो एक ही होती है मगर अलम बहुत से खड़े होते हैं। यह एक संकेत है इस बात की ओर कि यद्यपि अब्बास दुनिया में नहीं रहे मगर उन का अलम आज तक ऊंचा है और सदा ऊंचा रहेगा। क्यों कि सत्य का झंडा कभी नीचा नहीं होता। यह दृश्य बेशक एक तरफ़ दिल में जोश, उत्साह और सत्य पर मर मिटने की उमंग पैदा करता है और रगों में ख़ून की रवानी बढ़ाता है तो दूसरी तरफ़ एक ऐसे बहादुर की लाश का ऐसा दिल तोड़ने वाला दृश्य हमारी आंखों से आंसू जारी कर देता है––वह आंसू जो बहादुरी की क़दर करने के कारण निकलते हैं और हिम्मत की ज्वाला को और भड़काते हैं।

दिल तो यही चाहता है कि ग़म के इसी एक दृश्य में डूब जाय मगर तट की ऊंचाई से मैदान साफ़ नज़र आता है और निगाह को अपनी ओर खींचता है।

यहाँ कोई एक ही दृश्य नहीं है वरन् सच मुच बलिदान क्षेत्र यही है। दूर तक लहू का छिड़काव है। जगह जगह ख़ून के थाले बन गए हैं। टूटे हुए भाले, तलवारों के टुकड़े, कटे हुए तीरों के ढेर हैं जो इधर उधर लगे हुए हैं दुश्मनों के सर हज़ारों की संख्या में ज़मीन पर लुढ़क रहे हैं और लाशें भी बहुत दूर तक दिखाई देती हैं। इन सब के बीच में बहत्तर उज्जवल मूरतें भी रक्त और ध ूल में सनी हुई इस तरह पड़ी हुई हैं कि किसी का शरीर तीरों से छलनी है, किसी का सर गुर्ज़ की चोट से फटा हुआ है, किसी का पहलू ख़ंजर से चाक और किसी का सीना भाले से ज़ख़्मी है।

इन में साठ सत्तर और अस्सी वर्ष तक के बूढ़े, 18 से लेकर 35 वर्ष तक के जवान और 11, 12 वर्ष के बच्चे भी हैं– हाशमी ख़ानदान के जवानों बल्कि बच्चों तक की सज–धज सब से अलग है। इस में एक चाँद का टुकड़ा, तलवार का फल खाए इस हाल में पड़ा है कि उस की पगड़ी के पेंच ख़ून से लाल होकर लटक आए हैं और उस सुन्दर चेहरे पर सेहरे की तरह छा गए है ! हाथों में ख़ून की मेंहदी और सीने पर ज़खमों की बद्धी है। यह है हसन का यतीम (अनाथ) और हुसैन का चहीता भतीजा क़ासिम जिसे बिदा करते समय हुसैन ने अपने गुज़रे हुए भाई हसन की वसीयत को पूरा करते हुए अपना दामाद भी बना लिया था–करबला में उन की याद में एक विवाह–कुटी बनी हुई है और भारत में उनकी याद में सातवीं मुहर्रम को मेंहदी उठती है। इन्हीं के पास अठ्ठारह वर्ष के कड़ियल जवान की लाश है जिस के सेहरे के फूल खिलने की नौबत नहीं आई। यह अली अकबर हैं जिन को हुसैन इस लिये बहुत चाहते थे कि वह हूबहू रसूलुल्लाह की तसवीर थे–इन के विदा होते समय इमाम हुसैन ने अल्लाह को गवाह करके कहा था कि जब हम रसूलुल्लाह को देखना चाहते थे तो इस चेहरे को

देख लेते थे।

अली अकबर को देखते ही अली असग़र का ख़याल आता है। वह छः महीने का बच्चा जिसे हुसैन ने सब के अन्त में बलिदान के लिए अर्पण किया जो प्यास से व्याकुल था मगर उसकी प्यास पानी से नहीं बल्कि तीर से बुझाई गई। इन की लाश ढूंढने पर भी नहीं मिलती, हाँ ज़मीन पर एक छोटी सी कबर बनी हुई है। इस बच्चे को इमाम हुसैन ने उसके शहीद होने के बाद ही दफ़न कर दिया था, शायद इस लिये कि ऐसे बच्चे को मारडालने वालों का यह महापाप देखकर खुद हुसैन भी इस बच्चे को मिट्टी के नीचे छिपा देना चाहते थे। सब के अन्त में निगाह नीचे की ओर जाती है और यहीं ठहर जाती है। यहाँ पवित्रता की मूरत, शाम की लाली में चमकते हुए सूरज की तरह एक लाश पड़ी हुई है जो ज़ख़्मों से चूर है। सर पहले ही कट चुका है। इस लिए सूरत से तो पहचाना नहीं जा सकता मगर असंख्य ज़ख़म यह कहते हैं कि तमाम हथियारों का निशाना यही थी और दुशमनी इसी से थी। टूटी हुई कमर बताती है कि यह वह है जिसका बराबर का भाई मार डाला गया। बाँह तीर से छिदी हुई यह ख़बर देती है कि इस के हाथों पर छः महीने का बच्चा तीर का निशाना बना। ख़ून से रंगे हुए हाथ पता देते हैं कि इन्हीं हाथों से उस ने बच्चे का ख़ून अपने चेहरे पर मला था। सीने पर चौड़ा, गहरा घाव और पीठ के उस पार उस का निशान देखकर हम समझ सकते हैं कि यह वह है जिसके सीने पर तीर पड़ा तो सामने से निकल न सका। आख़िर पीठ की ओर से उसे खींचा और सीने से ख़ून परनाले की तरह जारी हुआ। शरीर का टुकड़े टुकड़े होना इस बात की पहचान है कि यही वह है जिस का शरीर शहीद होने के बाद घोड़ों की टापों से रौंदा गया। साफ़ मालूम होता है कि यह है पवित्रता की जान, सत्य का सिपाही, मानवता का रक्षक, इस्लाम के सूरमाओं का सेनानी और इस सदा याद रहने वाले उज्जवल दृश्य का केन्द्रीय व्यक्ति। जिस ने जान देदी मगर सत्य और धर्म पर जाँच न आने दी। जिस ने इस्लाम की इज़्ज़त पर अपनी हर चीज़ क़ुरबान कर दी। आज हर साल दुनिया में पूरब और पश्चिम में मुहर्रम में उन्हीं का शोक मनाया जाता है और उन ही की याद है जो विभिन्न प्रकार से हरी रखी जाती है और 13 शताब्दियाँ बीतने के बाद भी हर वर्ष के बाद दूसरे वर्ष इस में ज़्यादती होती रहती है।

(इमामिया मिशन प्रकाशन नं0 204)

**(पेज नं0 29 का बक़िया,.........)**

परिस्थियों की रफ़्तार और बिगड़ चुकी थी। मुआविया ने सुल्हनामें की शर्तों का उलंघन किया। 'यज़ीद' खलीफ़ा हुआ। उसने इस्लामी आवरण का वह आख़िरी तार नीचे के फेंक दिया जो मुआविया अपनी सरकार के चेहरे पर छोड़ गये थे। अन्यायकारी साम्राज्यवाद के क़दम और मज़बूत हुए।

अधर्मी साम्राज्यवाद इस्लाम का प्रतिनिधि बना। अब हालत अपनी पराकाष्ठा पर थी और प्रतीक्षा की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं रही। इमाम हुसैन (अ0) पर जब यज़ीद का धार्मिक नेतृत्व लादा गया तो आपने ''बैअत'' करने से इन्कार करके इस नेतृत्व को मानने से साफ़ इन्कार कर दिया। और फिर आपने आखिरी क़दम उठाया। जिसने लक्ष्य की पूर्ति कर दी। जिसके लिए बरसों से यह कोशिश जारी थी। धर्म, राजसत्ता से अलग हो गया। दीन और सम्राज्य का नाता टूट गया। नेतृत्व बट गया। और एक ऐसे वातावरण का सृजन और एक ऐसी फ़िज़ा की खिलक़त हुई जिसमें इस्लाम को ज़िन्दा रहने और प्रगति करने का मौका था। यह सिद्ध हो गया कि इस्लाम उन धर्मों में नहीं है जिन को हुकूमत के सहारे की आवश्यकता हो। अगर उस वक़्त इस्लाम और राजसत्ता का नाता न तोड़ दिया जाता तो आइन्दा यज़ीद और इस्लाम एक दूसरे के पर्याय बन जाते।इमाम हुसैन (अ0) की शहादत से पहले के वातावरण पर नज़र किजिए और इन दोनों का मुक़ाबला कीजिए। तो परिस्थिति और स्पष्ट हो जायेगी। हुसैन (अ0) की शहादत से पहले जितने फरमां रवा गुज़रे हैं उन्हें धार्मिक और राष्ट्रीय नेता समझा गया। यज़ीद के बाद जितने भी खलीफ़ा हुए वह सब केवल बादशाह थे धार्मिक नेता न थे। इसके सुबूत में बस इतना कह देना पर्याप्त है कि इमाम की शहादत के बाद प्रत्येक दरबार में आपको सरकारी ''फ़क़ीह'' और ''मुफ़्ती'' नज़र आयेगें। जिनका काम धार्मिक बातों का निपटारा और धर्म विधि सम्बन्धी मामलों में व्यवस्था देना था।